Artistic Narration: *A Peer Reviewed Journal of Visual & Performing Art* **ISSN (P): 0976-7444**
Vol. IV. , 2013

छापाकला की तकनीक

शिवानी आर्य
ललित कला विभाग
चौ0 चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ
&
कु0 नीतू
ललित कला विभाग
चौ0 चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ

सारांश

भारत में छापाचित्र कला तकनीक का प्रयोग आदि–काल से हो रहा है। आदि मानव द्वारा निर्मित छापाचित्र कला के आरम्भिक चित्र सिन्धु घाटी काल की कला, संस्कृति तथा कंडाकोट के समीप की गुफाओ में स्पष्ट दृष्टिगत होते है। अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में इस कला का विस्तृत और व्यापक स्वरूप हमें दक्षिणी फ्रॉस और उत्तरी स्पेन में देखने को मिलता हैं। जो तत्कालीन छापाचित्र कलाकारो की सूक्ष्म अनुभूति का विवेक पूर्ण प्रदर्शन है और कलात्मकता के साथ–साथ सारगर्भित भी है सामाजिक ऐतिहासिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य ने कलाकार को इस कला के प्रति आकर्षित किया और इस कला शैली का प्रचलन धीरे–धीप्रे विकास की ओर अग्रसर हुआ। छापाचित्र कला की इस विद्या को ''भारतीय छापाचित्र कलाः आदि से आधुनिक काल तक'' पुस्तक के रूप में प्रस्तुत किया गया है जो अभी तक जनसाधारण के लिए लगभग अनजान है।

हमें यह बात ध्यान में रखनी होगी कि जो तकनीकें आज हमारे पास है। उनका ऐतिहासिक क्रम में विकास हुआ है। ''कब कहाँ और कैसे ये तकनीक प्रकट हुई यह महत्वपूर्ण है क्योंकि कुछ तकनीकों के द्वारा अन्य की तुलना में ज्यादा अच्छा प्रभाव उत्पन्न किया जा सकता है।

अम्लांकन (Etching):– रेखा उत्कीर्ण से अधिक सुगम तकनीक होने के कारण अम्लांकन का सोलहवी शताब्दी के प्रारम्भि वर्षो से ही अत्यधिक रूप से प्रयोग किया गया। प्रारम्भ में इस क्रिया के वास्तविक मूल्यों एवं विशेषताओं को नही अपनाया गया। आमतौर पर प्रारम्भिक अम्लांकन लोहे पर किया गया था।

''एलबर्ट एल्डोर्फर (Albrecht Altdorfer) ने अपने भू–दृश्य में और उसके अनुयाईयों, हीर्शबोगल (Hirschovogel) और रीगनबर्ग स्कूल के अन्य सदस्यों ने अपने भू–दृश्यों में वृक्षो के चित्रण की बारीकियो मे दिखाया है कि मुक्त रेखाएँ अकसर प्रकृति के सच्चे भाव को गति प्रदान करतीहै।[25] रेखाओं

की भिन्न मोटाईयां गहराई सुझाती है। जिसमें अग्र भूमि को मोटी रेखाओं, मध्य दूरी को हल्की रेखाओं व अधिक दूरी वाले भाग को अधिक हल्की रेखाओं से प्रदर्शित किया है।

सम्भवतः रेम्ब्रा वॉन रिज्न (Rembrandt vam rijn) ने अन्य कलाकारों की तुलना में अधिक अम्लांकन किया, उसकी तीन सो से ऊपर प्लेट प्रमाणित है।[26] चाँदी की प्लेट पर उत्कीर्ण के लिए होगार्थ को सराहा जाता है 18वीं शताब्दी के मध्य में दो महान कलाकार उभरे जिनके काम ने अम्लांकन को नया जीवन दिया, वह थे वहीस्लर (Whistler) और चार्ल्स मयॉन (Charls Meryon).

लिथोग्राफी

ग्राफिक कला की अधिकांश प्रक्रियाओं की खोज के प्रारम्भिक उदाहरण कुछ अस्पष्ट है लेकिन लिथोग्राफी के अविष्कारक की एक स्पष्ट पहचान है। 1796 ई0 में म्यूनिख के एलोय स्नेफेल्डर (Alyoys Senefelder) ने लिथोग्राफी तकनीक की खोज की थी।[27] प्रारम्भ मे स्नेफेल्डर की खोज को छपाई की एक सस्ती प्रक्रिया माना गया इस कारण यह अत्यधिक पंसन्द की जाने लगी थी। 1803 में फस्ली और स्टोर्दड (Fuseli and stotherd) दो संस्करण प्रकाशित हुए। यह समस्त चित्र शिला पर पैन से बना कर छापे गये थे जो कि पॉलिआटोग्राफी (Polyautography) के नमूने के रूप में जाने जाते थे।

लखनऊ में लिथोग्राफी एन् 1830 में पहुची। अवध के नवाब नसीरूद्दीन हैदर ने एक अंग्रेज आर्चर (Archer) को लखनऊ में लिथों प्रैस लगाने का कहा और शीघ्र ही वहाँ लगभग 12 प्रैस स्थापित हो गए।[28]

ये पछले सन् 1822 ई0 में दो फ्रांसासी कलाकार वेलनोस (Belnos) और सेविग्नाक (De Savignhac) ने कलकत्त में लिथोग्राफी की शुरूआत की सन् 1825 में कलकत्ता में ' ऐशियाटिक लिथोग्राफिक प्रैस' की स्थापना हुई। सन् 1827 तक लिथोग्राफी तकनीक मद्रास पहुँच गई जहाँ इसी वर्ष जॉन गान्ते (John gante) ने भारतीय व्यवसाय और व्यापार के बीस लिथो छाप 'भारतीय लघु बह्माण्ड प्रकाशित किए।

सैरीग्राफी

सैरीग्राफी या सिल्क स्क्रीन प्रिटिंग, छापा बनाने के लिए एक सीधी और सरल तकनीक है। इस तकनीक में रेशमी (सिल्क) कपड़े पर गोंद या अन्य साधन द्वारा वह जगह ढ़क दी जाती है। जिसको कलाकार छापना नही चाहता फिर इसके ऊपर गाढ़ा रंग डालकर उसे स्कूइजी द्वारा दबाव देते हुए दूसरी तरफ खीचा जाता है। जिस स्थान पर गोंद या अन्य रूकावट (स्टेसिंल) नहीं होती वहाँ कपड़े से रंग निकलकर कागज पर छप जाता है।

सैरीग्राफी छापाकला के क्षेत्र में एक नया माध्यम है लेकिन यह एक स्टेंसिल विधि है जो प्राचीन काल से ही चली आ रही है। हम कह सकते है कि–कीड़ो द्वारा पत्तों में किए छेदो ने आदि मानव को स्टेसिल प्रक्रिया के प्रति जागृत किया होगा। द्वीपवासी केले के पत्तो में छेदकर के एक प्रकार का स्टेंसिल तैयार करते थे। उसके पश्चात उन खुले स्थानों में प्रकृतिक रंगों को लगाकर छाल वस्त्रों पर छपाई करते थे।

जापानी इस तकनीक को वस्त्रो और अलंकृत पृष्ठभूमि के लिए प्रयोग करने लगे तब उन्होंने इस तकनीक का अत्यधिक विकास किया यह अनुमान लगाना अत्यनत कठिन है कि जापानियों ने इतने उत्तम सूक्ष्म स्टेंसिल कितनी तकनीकी दक्षता और धैर्य से कोटे होगे।[29] उनके स्टेसिल एक विशेष रूप से तैयार

किए जलप्रतिरोधी पेपर में काटे गए है। जो रंगों के गीलेपन से अप्रभावित रहते है। स्टेसिल के बीच व अन्य भाग जो अधर में लटकते रहते थे, उन्हे मनुष्य के बालें द्वारा गोद से चिपका कर जोड़ दिया जाता था।

अधर में लटकते स्टेंसिल को पकड़ कर या चिपकाए रखने के लिए आधार अर्थात स्क्रीन के रूप में सिल्क कपड़े के प्रयोग का विचार इंग्लैण्ड में मेन चेस्टर के **सेमुयल साइमन** (Samuel Simon) के मस्तिष्क में आया जिसने एक 'सिल्क स्क्रीन प्रक्रिया विकसित की ओर सन् 1907 में उसके पूर्ण अधिकार सुरक्षित किए।[30]

छापाचित्रो में डिजाइन और कारीगरी की दुनियाँ के बाहर आज व्यवसायिक छपाई का एक विशाल क्षेत्र जहाँ पुस्तके, विवरणिकाएँ सारणियॉ, मुडवाँ इश्तहार,समाचार पत्र, प्रचार पुस्तिकाएँ आदि इस माध्यम पर निर्भर है। यह सामग्री केवल सरल अक्षरो, फोटाग्राफ या इन सब के मेल तक ही सीमित नही है। आज सभी देशो में कलाकार मूल रूप से छापा चित्रों के उत्पादन में लगे है समकालीन घरों मे दीवारो की साज–सज्जा और शोभा बढ़ाने के लिए विक्रय हेतु प्रदर्शन किया जाता है।

काष्ठ ब्लॉंक

छापाकला के क्षेत्र में विश्व की सबसे प्राचीनतम विद्या काष्ठ–छापा कला ही दिखाई देती है। छठी शताब्दी में यह विद्या चीन में परिधान छपाई के काम में प्रयोग होती थी। धीरे–धीरे यह कोरिया होते हुए जापान में भी प्रचलित होती गई। जापान में इस विद्या में नए प्रयोग होने लगे प्रारम्भ में यह विद्या एक शिल्प के रूप में विकासित हुई और धीरे–धीरे इस माध्यम द्वारा स्वतः अभिव्यक्ति भी होने लगी। इस काष्ठ छापाकला का विकास करने में ओकाइयों स्कूल का बहुत बड़ा योगदान रहा। कालातर में प्रसिद्ध कलाकर शिको– मुनाकाता ने अनेक प्रभाववादी छापे बनाऐ। धीरे–धीरे यूरोप में भी यह विद्या प्रचलित होने लगी।

प्रारम्भ में कलाकार चेरी–वुड़,बाक्स–वुड़ लकड़ियों के सपाट चिकने पटरों पर तेजधार वाले चाकू या टूल से आकृतियॉ उकेरते थें। इन उभारी हुई आकृतियों को स्याही लगाकर छाप लिया जाता था। इसी कारण इस प्रकार के छापे रिलीफ–प्रिंट भी कहलाए।

अनेक रंगों से अलंकृत डिजाईन वाली वस्त्र छपाई तकनीक प्राचीन भारतीयो के द्वारा प्रयोग में लायी जाती थी जिसने कालांतर में छापा बनाने की तकनीक ''काष्ठ चित्रण'' कों जन्म दिया। [31] काष्ठ ब्लॉक और छपाई कला का सम्बन्ध बहुत प्राचीन है। भारत में सबसे पहले पुर्तगालियों ने गोआ में सन् 1556 में पहला छापा खाना स्थापित किया। सन् 1772 में डेनिश मिशन ने सबसे पहली पुस्तक भारत में छपी। इसमें लकड़ी के ब्लॉकों का प्रयोग किया गया था। सन् 1785 में ईस्ट इण्ड़िया कम्पनी ने बंगाल के श्री रामपुर में छापाखाना स्थापित किया। उसके बाद हुगली (कलाकत्ता) में छापेखाने खुलते गये।

लगभग–18 वी शताब्दी के प्रारम्भं में एक अंग्रेज थामस–विविक ने कॉपर प्लेट पर इनग्रेविंग की तरह लकड़ी की प्लेट पर भी इनग्रेविंग प्रारम्भ किया इससे काष्ठ छापों में प्रकाश–छाया या दूर पास का प्रभाव भी पैदा होने लगा

20वीं शताब्दी में मातिस और पिकासों ने भी सफलतापूर्वक अनेक कलात्मक काष्ठ छापों की रचना की।[32] इसके अतिरिक्त विश्व के अनेक कलाकारों ने इस माध्यम में कार्य किया है। सन् 1792 में अंग्रेज विलियन ब्लैक ने कलकत्ता के बारह दृश्य चित्रों के ब्लॉक बनाकर छापे बंगाल छपाई तकनीक का केन्द्र था, अतः काष्ठ छापाकला का विकास भी यहीं पर अधिक हुआ।

तिब्बत में बौद्ध धर्मावलंबी अपने नित्य पाठ के लिए लकड़ी के ब्लाकों से पुस्तक छापा करते थे। यह पाण्डुलिपि की काष्ठ उत्कीर्ण पट्टिकाएँ स्थानीय चैत्यों में उपलब्ध होती थी, इन्हें अंग्रेजी में जाइलोग्राफ्स भी कहा जाता है। भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व बंगाल के अलावा कई राज्यों में काष्ठ–उत्कीर्ण छापे बनने लगे थे। धीरे–धीरे कला महाविद्यायों में इस विद्या की शिक्षा दी जाने लगी।

''छापाकला के क्षेत्र में काष्ठ–छापा का इतिहास सबसे प्राचीन है। विश्व के महानतम् कलाकारों ने इस माध्यम द्वारा अभिव्यक्ति की है इस माध्यम से निरनतर प्रयोग हुए है। जैसा कि हम जानते है कि प्रारम्भ से ही लिथोग्राफी प्रक्रिया प्रचार हेतु चित्रों की छपाई के लिये प्रयोग की जाती थी। ''सन् 1820 में बंगाली स्वामित्व की सर्वप्रथम लिथो प्रैस कलकत्ता में स्थापित हुई इसे **शुरा पथुरिया प्रैस** के नाम से जाना जाता था। इसने हिन्दु देवताओं की आकृतियों को छापना प्रारम्भ किया।[33] ऐसा माना गया है कि जो कलाकार इन आकृतियों को शिलाओं पर चित्रित कर रहे थे वह सब कालीघाट से थें। यहाँ कालीघाट चित्रों के कुछ अवशेष विद्यमान है, जहाँ मूल रूप रेखाचित्र को लिथो प्रक्रिया द्वारा छापा गया है तथा बाद में हाथ द्वारा उसमें रंग भरे गए है। इस समय तक किसी को छापा बनाने की कला सीखने के लिए एक उत्कीर्णक या किसी एक छापाकार के पास शिक्षार्थी बनकर रहना पड़ता था।

सर्वप्रथम कला विद्यालय चैन्नई में स्थापित हो चुका था। 2 मार्च 1887 को एम0 एग्यर (M.Agyer) ने बम्बई में जे0जे0 कला एवं उद्योग विद्यालय (J.J.School of Art and Industey) प्रारम्भ किया। कला विद्यालयों की स्थापना के पश्चात जो भी लिथोग्राफ छापे बनाए गए वह सब मुख्यतः कला विद्यालयों से शिक्षित कलाकारों ने पश्चिमी शास्त्रीय शैली में बनाए।[34] लिथोग्राफी छपाई की क्षेत्रीय शैली का विकास पचास के दशके के बाद चैन्नई और पंजाब में हुआ। दक्षिण के लिथोग्राफ सरल, दक्षिणी भारतीय कॉच चित्रण की याद दिलाने वाले और विषय व अभिक्रिया में पारम्पारिक थे। प्रारम्भिक छापाचित्र एक सीधे बड़े छापा बनाने की तकनीक का अनुसरण थे।

1841 और 1845 में द ओरिएटल लिथोग्राफिक प्रैस चैन्नई द्वारा छपे 'हिन्दू देवगण' तथा 1849 व 1850 में प्रकाशित 'विष्णु धर्म' का सन्दर्भ यथोचित होगा इन रेखाचित्रो के लिए शिला का निर्माण चैन्नई में कम्पन के प्रमुख मानचित्रों के लिए शिला का निर्माण चैन्नई में कम्पनी के प्रमुख मानचित्रक ऐटिऐने एलेक्जेण्डर (Etienne Alexander rodriguez) ने किया था। लेकिन इनकी नकल स्पष्टतः त्रिचिरापल्ली चित्रकला से की गई थी।[35]

पंजाब में लिथोग्राफ की स्थिति कालीघाट चित्रकारों से अलग नही थी। पंजाब में लिथोग्राफी तकनीक पांचवे दशक के प्रारम्भ में पहुँची। काष्ठ चित्रों के विपरीत लिथोछापा चित्र जो सिखों के लिए आवश्यक थे। वह हिन्दुओं को भी लुभाते थे। अतः सिक्ख विषयों से हटकर हिन्दू पौराणिक आदर्शो जैसे 'राम' और 'कृष्ण' के चित्र, इनसे अतिरिक्त लोकप्रिय लोक विषयो जैसे 'लैला–मजूंन और 'सोहनी–महिवाल' आदि का भी चित्रण है।

इंग्लैड से टी0एफ0 फाऊलर (T.F.Fowler) नामक एक कलाकार आया और फरवरी 1855 में उसने कलकत्ता के औद्यौगिक कला विद्यालय में उत्कीर्ण, अम्लांकन और लिथोग्राफी के अध्यापक के रूप में कार्य आरम्भ किया। फाऊलर के विद्यार्थियों ने 1856 से सौपे गए कार्यो को गढ़ना प्रारम्भ कर दिया। उत्कीर्ण कक्षा के विद्यार्थियों ने डी0सी0 रिचर्डसन् (D.C. Richardson) की " The Indian handbook of gardening (द इन्डियन हेण्डबुक ऑफ गार्डनिंग) का डिजाइन बनाया गया कार्यान्वित किया जसका प्रकाशन सन् 1857 में हुआ। [36]

'द ग्रेट हिन्दू रिफार्मर ऑफ इन्डिया' शीर्षक से राजा राम मोहन राय के एक पाश्रर्वक मुख चित्र आर0एन0 बोस एण्ड कम्पनी के लिए रॉयल लिथोग्रफिक प्रैस कलकत्ता ने 25 जून 1858 को छापा था इस

प्रैस की स्थापना कलकत्ता के औद्यौगिक कला विद्यालय के कुछ विद्यार्थियों ने मिलकर की थी। इस चित्र को नवीनचन्द्रघोष ने बनाया था।[37] डेविड गेरिक (Dalid Garrick) जो चेन्नई में अध्यापन कर रहा था। वर्ष 1856 में मद्रास छोड़कर कलकत्ता में आकर बसं गया। उसके सरंक्षण में भारत के प्रथम छापाकार आनन्द प्रसाद बागची का उदय हुआ। बागची ने एक या दो वर्षो में ही अपने आप को एक उत्तंम मानचित्रक, उत्कीर्णक और लिथोग्राफर के रूप में विद्यालय में स्थापित कर लिया था।

अपनी शिक्षा पूर्ण करने के पश्चात बागची को विद्यालय में अध्यापक नियुक्त किया गया। लेकिन सन् 1876 में उसने कला विद्यालय छोड़ दिया गयी तथा अपने चार कलाकार मित्रों व सहकर्मियों के साथ मिलकर 'कलकत्ता आर्ट स्टूडियों की स्थापना की और वह स्वयं एक स्वछन्द छापाकार बन गया।

बगची द्वारा चित्रित अन्य पुस्तकों मे प्यारी चन्द्र मित्रा की 'आध्यात्मिका' (ईश्वर चन्द्र बासु एण्ड क0 कलकत्ता द्वारा 1879 में प्रकाशित) विशेष अल्लेखनीय है। शैलीगत आधार पर कलकत्ता आर्ट स्टूडियों द्वारा बनाई कृतियाँ ब्रिटिश अकादमी विद्यालय की 18 वी और 19 वी शताब्दी की कृतियों से भिन्न नही है। [38]

बागची ने कालीदास पाल और शरत चन्द्र देव के साथ मिलकर एक चित्रित कला पत्रिका 'शिल्प पुष्पांजलि' सन् 1883 से निकालनी शुरू की इसमें अम्लांकन व लिथोग्राफ थे।

उन्नसवी शताब्दी के उत्रार्द्ध में बगांल में बागची के अतिरिक्त दामोदर हालदर, शशिधर बनर्जी, कार्तिक चन्द्र बसाक, दादा ठाकुर अन्य प्रसिद्ध छापाकार थे।[39]

बंगाल में दैवी प्रतिमा के चित्रों को पारिवारिक मन्दिरों मे रखने का रिवज था। बंगाल के लगभग समस्त सभ्रान्त व व्यापारी वर्ग के परिवारों में यह प्रतिमा चित्र पाए जाते है। इन चित्रों के मुख्य विक्रेता पटुआ या लोकचित्रकार थे। 19 वी शताब्दी के पांचवे दशक के लगभग शहरी छापाकारो के छापे इन पटुओं के चित्रों के बदले लोकप्रिय होने लगे तथा पटुओं के चित्रों का बाजार समाप्त होने लगा कालीघाट के पटुओं के द्वारा इस प्रकार के मूल चित्रों से बनाए व ग्रन्थ में छपे दो छापे आशुतोष संग्रहालय में है। छपाई के बाद इन्हे हाथ से रंगा गया है। लेकिन यह छापे रॉयल लिथोग्रफिक प्रैस या कलकत्ता आर्ट स्टूॅडियों के लिथोग्राफ से मुकाबला नही कर सके।

सन्1807 के पश्चात भारत के भिन्न भागों में अनेक निजी छापाखाने फलने–फूलने लगे थे। इन छापाखानों से सांसारिक और धार्मिक छापे स्थानीय बाजारों मे छा गये और भारतीयों के मध्य फूलने लगे थें। यह काष्ठ चित्र साधारणतः एक रंग में है तथा इन्हे रंगीन स्याहियों द्वारा रंगा गया है। जबकि लिथोग्राफ छापे अधिकांशतः बहुरंगी है। ढ़ाका, बम्बई पूना, मैसूर, और दिल्ली में भी छपाई पर कुछ अधिक ध्यान दिया जा रहा था।[40]

मुम्बई और चेन्नई के कला विद्यालयों में छापा बनाने का माध्यम अधिक आधार प्राप्त नही कर सका। 'स्टोरी ऑफ सर जे0जे0 स्कूल ऑफ आर्ट ' में उल्लिखित ''लिथों–प्रैस अभी तक पुस्तकों को छापने में लगी थी और भारतीय क्षितिज चित्रित प्रकाशनों का आगमन अभी शेष था। 1880 में एन0एल0 दत्ता, चुन्नी लाल, वी0 पी बनर्जी, एस0 धुरंघर आदि छापाकार प्रसिद्ध थे।

सन् 1883 में 'बमपदा बंधोपाध्याय पहला कलाकार था। जिसने अपने तैल चित्रों को जर्मनी से औलियोग्राफ कराया था धार्मिक और सामाजिक उदेश्यों को अधिकाधिक भारतीय जनता तक पहुँचाने के लिये सचेतन रूप से छाप माध्यम का शोषण करने वाले पहले आधुनिक भारतीय कलाकार रवि वर्मा थे। रवि वर्मा ने उन्नसवी शताब्दी के अन्तिम दशक सन् 1893 में अपनी लिथोप्रैस जर्मनी से आयात कर घाटकापु बम्बई में स्थापित की । इस प्रैस से वह अपने चित्रों के औलियोग्राफ करते थें।

चित्रों में भारतीय इतिहास के जीवन की झाँकी पौराणिक कथाएँ दन्तकथाएँ और पौराणिक देवताओं के चित्रण इत्यादि की लोक शैली में प्राथमिकता थी। उदेश्यो के चित्रण में कठोर, भारी, बहती विशिष्ट रेखाएँ समोच्च रेखाओं के रूप में कार्यान्वित थी। मूलभाव, विशेषकर आकृतियाँ एक ही तरह–सामने की तरफ से और जो वास्तव में गतिमय थी बस स्थिर प्रतीत होती थी।

श्री कुमार स्वामी के शब्दों में ''पवित्र और पौराणिक दृश्यों को चित्रित करने में राजा रवि वर्मा के चित्रों में कल्पना शक्ति की निर्बलता विषय की भव्यता और गम्भीरता की अभिव्यक्ति का अभाव आदि अक्षम्य दौष पाए जाते है। उनके चित्र इस प्रकार के है कि उन्हें पाश्चात्य चित्रकला का कोई छात्र आवश्यक साहित्य के पठन और भारतीय जीवन के सामान्य अध्ययन के पश्चात अंकित कर सकता था।[41]

यह पुरातन अभ्यास चित्रण, वास्तविकता और वास्तविक संसार के मध्य के सम्बन्ध को लेकर उलझन का प्रभाव थी। प्रमुख उलझन चित्र स्थान की प्रकृति के चारो तरफ केन्द्रित थी। बंगाल के लोक–चित्र में चित्र स्थान को द्विआयामी समतल स्थान के रूप में लिया गया है। जिसमें अभिप्राय एक तल पर रखा गया है रेखीयस्थिर आकृतियाँ स्थान की इस धारणा का अनिवार्य अंग है।

सत्यप्रसन्न मुखोपाध्याय ने सन् 1908 में लिखते हुए उल्लेखित किया 'यह नही कहा जा सकता कि लिथोग्राफी एक कला रूप (माध्यम) है यह तो केवल तैलचित्र की कला को अधिकाधिक जन समूह तक वितरण में सहायता करता है।

इसी कारण इसमें नयापन है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *कुमार, डॉ0 सुनील, भारतीय छापाचित्र कला, (2000) प्रथम संस्करण, भारतीय कला प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ सं0 – 21*
2. *Cleaver, James, A History of Graphic Art, P – 71*
3. *वहीं है। पृष्ठ – 148*
4. *Silk Screen Techniques Blegelesen and cohn, p- 38*
5. *Prinmaking Techniques the wood cut, p- 23*
6. *शर्मा, श्याम, पूर्वाचल क्षेत्र की छापाकला, समकालीन कला– 14 पृष्ठ सं0 – 20*
7. *कुमार, डॉ0 सुनील, भारतीय छापाचित्र कला, (2000) प्रथम संस्करण, भारतीय कला प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ संख्या – 58*
8. *Indian printmaking today 1985 – p- 20*
9. *Indian Printmaking, today 1985 – p-18*
10. *Ray, Pranabranjan, Early Graphic Art in Bengal, Contemporary – 18*
11. *Indian printmaking, today 1985-p 20*
12. *कुमार, डॉ0 सुनील, भारतीय छापाचित्र कला, (2000) प्रथम संस्करण, भारतीय कला प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ सं0– 61*
13. *शर्मा, श्याम, पूर्वाचल क्षेत्र की छापाकला, समकालीन कला– 14 पृष्ठ सं0 – 37*
14. *Mukhopodhyaya Amit and Das Nirmalendu, Graphic Art In India Since 1850.*
15. *Ray, Pranabranjan, Early Graphic Art in Bengal, Contemporary -18*
16. *Mittal Jagdish, Graphic Art of the Bengal School : Contemporory – 1*
17. *Graphic Art in India.*